तीर्थङ्कर ऋषभदेव और सनातन धर्म

वस्तु व्यवस्था के सनातन स्वरूप विषयक जिनके कथन विरोध रहित हैं, ऐसे सभी ऋषि, मुनि, तीर्थङ्कर सनातन धर्म के प्रतिष्ठापक हैं। इस चिन्तन की पोषक जितनी भी धार्मिक व दार्शनिक सम्प्रदाय-परम्पराएं हैं, वे सभी उसी सनातन धर्म की शाखाएं हैं। श्रमण परम्परा के आद्य तीर्थङ्कर ऋषभदेव भी उसी वस्तु व्यवस्था के सनातन स्वरूप के प्रतिपादक हैं। 'धर्म' शब्द के साथ संयुक्त 'सनातन' शब्द से यह सूचित होता है कि जो धर्म सदा विद्यमान रहे, वह 'सनातन धर्म' है। दूसरे शब्दों में यदि कहा जाये तो जो धर्म है, वही सनातन है। जैनाचार्यों ने वस्तु के स्वभाव को धर्म कहा है। वस्तु का स्वभाव ही सनातनता का बोध कराता है। जो जो अपने चिन्तन में इस तथ्य को विषय बनाते हैं, वे सभी सनातनी हैं। मोक्ष, पुण्य, अध्यात्म आदि मूल्यपरक अवधारणाएं दार्शनिक चिन्तन के कार्य हैं। मूल्य, तथ्यों के आलोक में ही कार्यकारी होते हैं। विना तथ्य के मूल्य निरर्थक हैं। सनातन, शाश्वत है, अविनश्वर है। मूल्य, परिवर्तनशील हैं। वे पर्याय के रूप में हैं और उनका सम्बन्ध वस्तु के तथ्यात्मक सनातन स्वभाव से बंधा हुआ है। जीवन में विकास के लिए मूल्यात्मक परिवर्तन होना आवश्यक है। परम्पराएं भी परिवर्तन स्वरूप मूल्यों के आधार पर उद्‌भूत होती हैं।

समस्या यह है कि सभी अपने धार्मिक और दार्शनिक सम्प्रदाय व परम्पराओं को ही मूल सनातन धर्म मानते हैं, अपने से इतर को स्वयं की परम्परा से उद्‌भूत। पर कोई यह स्वीकारने को तैयार नहीं कि सभी भारतीय धार्मिक परम्पराएं उसी सनातन धर्म की शाखाएं प्रशाखाएं हैं। वस्तुतः सनातन धर्म के तथ्यात्मक मूल चिन्तन को संरक्षित रखते हुए मूल्य विषयक विभिन्नताओं को अपनी अनुकूलताओं के आधार पर विनिर्मित कर अनेक स्वतंत्र धार्मिक परम्पराएं भी प्रसूत हुईं। यही कारण है कि वैदिक पूर्व हुए ऋषि, जिनका वेदों में उल्लेख किया गया है, उनको सनातन धर्म के मूल्यों के आधार पर बनीं कुछ धार्मिक परम्पराएं अपना प्रवर्तक मानती हैं, जैसे जैनधर्म में ऋषभदेव।

Scanned with OKEN Scanner

सनातन धर्म के आत्मतत्त्व, कर्म और पदार्थ विषयक अवधारणाओं को सम्पोषित करते हुए भगवान् ऋषभदेव की परम्परा ने अहिंसात्मक मूल्यों को प्रधानता दी, वही सनातन परम्परा श्रमण परम्परा के नाम से विश्रुत हुई। आचार और विचार के स्तर पर विकसित हुई वही पूर्ण अहिंसक जीवन शैली, धार्मिक और दार्शनिक जगत् में आर्हत और जैन अभिधान से विश्रुत हुई। इस परम्परा का यह वैशिष्ट्य है कि उसमें वस्तु की ध्रुवता को स्वीकार किया गया है तथा उसे ही शाश्वत, सनातन सत्य के रूप में स्वीकार किया जाता है, जिसे वे द्रव्यदृष्टि से अभिहित करते हैं। वस्तु के इस स्वभाव को धर्म कहा गया है। तीर्थङ्कर ऋषभदेव द्वारा प्रणीत यही सनातन धर्म है। सनातन धर्म का ज्ञान तत्त्वज्ञान के विना सम्भव नहीं है। श्रमण संस्कृति की शब्दावलि में जिसे शुद्ध द्रव्यदृष्टि कहा गया है। सनातन धर्म की वैदिक परम्परा में भी सत्य के रूप में एक ब्रह्म को ही स्वीकार किया गया है, जो प्राय: जैनों की द्रव्यदृष्टि की तरह है। ब्रह्म के अतिरिक्त समग्र वस्तु व्यवस्था अविद्योपकल्पित मानी गई है, जो प्राय: व्यवहार दृष्टि के रूप में प्रतिपादित है। वैदिक और जैन श्रमण परम्पराओं के तात्त्विक चिन्तन में शब्द चातुर्य के अल्प अन्तर को छोड़कर विशेष भिन्नता नहीं दिखाई देती।

व्यवहार और परमार्थ जगत में मिलावट घोर अनर्थ का कारण है, जो संयोगज हुआ करता है। तत्त्वज्ञान में मिलावट रहित पदार्थ की प्राप्ति का उपाय किया जाता है। तत्त्वज्ञान के प्रयास के उन्नत क्रम में तदनुसार जीव के मूल्य भी वैसे निर्धारित होते जाते हैं। जैन परम्परा के महान् आचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार ग्रन्थ में स्पष्ट किया है कि आचरण के आधार पर ही तत्त्वज्ञानी की पहचान की जा सकती है। तत्त्वज्ञानी के साथ आचरण का अविनाभावी सम्बन्ध है। यदि तत्त्व विषयक सम्यकग्ज्ञान आचरण में नहीं उतरा तो वह तत्त्वज्ञानी नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए जीव जब आत्मा से साथ संयुक्त विजातीय पदार्थों-शरीर, कर्म, राग द्वेष आदि को पृथक् अनुभव कर उनसे छुटकारे के लिए आचरण करता है, तब वह तत्त्वज्ञानी है। अध्यात्म-दर्शन की भाषा में जिसे 'स्व-पर विवेक' से भी अभिहित किया गया है। तीर्थङ्कर ऋषभदेव की शिक्षाओं का यही मूलमंत्र है कि जागतिक दु:खों से छुटकारा पाने के लिए आत्मा के साथ संयुक्त विजातीय पदार्थों को पृथक् करना अनिवार्य है। व्यावहारिक जगत के लिए

Scanned with OKEN Scanner

आवश्यक असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प की शिक्षा देकर व्यवहार सत्य को भी स्वीकार किया गया क्योंकि परम लक्ष्य मुक्ति का मार्ग यहीं से गुजरता है। मोक्ष तक जाने का मार्ग कैसे सुगम हो, संसार रूपी सेतु को कैसे पार किया जाये, इसके उपाय भी श्रमण संस्कृति में बताये गये हैं। तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ में लिखा है- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र इन तीनों के मेल से मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है। रत्नत्रय स्वरूप की आराधना का प्रारम्भ संसार से ही होता है, इसलिए जैनाचार्यों ने मोक्षमार्ग के संसाधनों की पवित्रता पर भी जोर दिया है।

जीव और अजीव सभी पदार्थों की ध्रुवता-सनातनता पर दृष्टि रखकर व्यवहार में आंशिक ज्ञान की आपेक्षिक सत्यता हेतु अनेकान्तवाद और स्याद्वाद का प्रतिपादन श्रमण संस्कृति की प्रमुख विशेषताएं हैं। सर्वोदय और सामाजिक व्यवस्था के मूलाधार अहिंसा और अपरिग्रह इन्हीं सिद्धान्तों से प्रतिफलित हुए हैं। इन्हीं की नींव पर श्रमण संस्कृति का भव्य प्रासाद खड़ा हुआ है। इन सिद्धान्तों के प्रकाश में तत्त्व का यथार्थ श्रद्धान और ज्ञान पूर्वक किया गया आचरण व्यक्ति को व्यक्तित्व की पराकाष्ठा पर पहुंचा देता है।

सनातन धर्म अनादि है, वस्तु व्यवस्था के इस सनातन स्वरूप के साथ सनातन धर्म को मानव धर्म के रूप में भी अभिहित किया जा सकता है, जिसका न कोई संस्थापक है और न ही उसके उदय का कोई कारण है, वह तो मानवधर्म के रूप में प्रवहमान अजस्र धारा है। भारतीय मनीषियों ने जिसे उद्घाटित किया है। धर्म-सत्य एक है, अविनश्वर और परम्परा से रहित है। जिसका कोई संस्थापक होता है एवं जिसके उदय का कोई कारण विशेष होता है, वह धर्म नहीं, सम्प्रदाय है। अंग्रेजी में जिसे रिलीजन कहा जाता है, वह धर्म का पर्याय न होकर सम्प्रदाय या पंथ का द्योतक है। कुछ भारतीय चिन्तकों ने आचार को धर्म और विचार को दर्शन कहा है तथा बताया है कि जब मानव विचारों के गर्भ में प्रवेश करता है तब दर्शन जन्म लेता है और जब विचारों को आचरण में ढालता है तब धर्म प्रकट होता है। वस्तुतः धर्म और दर्शन एक दूसरे के पूरक हैं।

हिन्दु धर्म के वेद, पुराण आदि ग्रन्थों में विभिन्न ऋषियों के उल्लेखों के साथ ऋषभदेव के भी उल्लेख पाये जाते हैं। जिससे वेदों से पूर्व

Scanned with OKEN Scanner

ऋषभदेव के अहिंसामूलक विचारों के अस्तित्व का पता चलता है। जैन अनुश्रुतियों के अनुसार ऋषभदेव के पूर्व भी कुलकर हुए हैं, जिन्होंने समय समय पर सामाजिक व्यवस्था का ज्ञान कराया। स्पष्ट है कि ऋषभदेव उस धर्म को मानने वाले प्रतिनिधि ऋषि या तीर्थङ्कर है, जो उनके पूर्व से चला आ रहा था, जिसको उनके समकालीन ऋषि भी मानते रहे। उस समय हिन्दु या जैन जैसा नामकरण नहीं था और न ही भेद। निश्चित रूप से वह धर्म शाश्वत है, अनादि है, सनातन है एवं जीवन का मूलभूत यथार्थ है। इसी यथार्थ तक पहुंचने के लिए विभिन्न सम्प्रदायों ने मार्ग दिखाने का प्रयत्न किया। ऐतिहासिक भूल प्रतीत होती है कि भक्तों ने मार्ग दिखाने वालों को ही धर्म का संस्थापक व प्रवर्तक मान लिया। उनकी एकान्तिक विचारधारा को धर्म का रहस्य समझने लगे। जिसका दुःखद परिणाम यह हुआ कि सदियों से धर्म के नाम पर भोले भक्तों को ठगा गया। लूट, रक्तपात, हिंसा, परतंत्रता, व्यभिचार आदि न जाने कितने दुष्कृत्य धर्म के नाम पर हुए।

'एकेव मानुषी जाति', 'भ्रातरो मानवाः सर्वे' अर्थात् मानव जाति एक है, सभी मनुष्य आपस में भाई हैं। ऋग्वेद के इन वाक्यों में मानव धर्म के रूप में सनातन धर्म के मूल्य समाहित हैं, उसमें धर्म की समग्रता अन्तर्निहित है। अज्ञानी और धार्मिक उन्मादी धर्म के इस रहस्य को विस्मृत कर, धर्म के नाम पर सम्प्रदाय या पंथ को ही सर्वोपरि मानकर उलझते रहते हैं। 'एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति' ऋग्वेद का यह मंत्रवाक्य और जैनधर्म का अनेकान्त, सनातन धर्म के रहस्य को समझने का मूलमंत्र हैं। सनातन धर्म या सत्-महासत्ता के किसी अंश को ही पूर्ण सत्य मान लेना उचित नहीं है क्योंकि वस्तु अनन्त गुणधर्म वाली है। आंशिक सत्यता स्वीकार करने के साथ दूसरों के द्वारा मान्य अंशों की भी सापेक्षिक सत्यता स्वीकार करने पर कहीं भी विरोध उपस्थित नहीं होता। दूसरे के मत की आंशिक सत्यता स्वीकार नहीं करने पर विरोध उपस्थित होता है। विरोध के प्रारम्भ की यही जड़ है। यही सम्प्रदाय और पंथों का उत्पत्ति स्थान है। वस्तुतः महासत्ता-सनातनता-ध्रुवता वस्तु के स्वभाव रूप धर्म हैं। उत्पाद और व्यय के रूप में द्रव्य परिवर्तित होते रहते हैं, उसी तरह सम्प्रदाय और पंथ भी बनते-बिगड़ते रहते हैं। इसलिए सनातन धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझकर व्यक्ति का आचरण ऐसा होना चाहिए जो दूसरों की आंशिक सत्ता को भी

Scanned with OKEN Scanner

स्वीकार करे। इससे वैचारिक विपरीतताएं जैसे मनमुटाव, कलह आदि से भी मुक्ति मिलती है। साथ ही **'यतोः अभ्युदयनिःश्रेयशसिद्धिः सः धर्मः'** इन ऋषि वचनों के अनुसार अभ्युदय और निःश्रेयस की भी प्राप्ति होती है।

प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुतत्त्वः पुनरद्भुतोदयो ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः।

– स्वयम्भूस्तोत्र, 2

स्वयम्भू, प्रजापति , इक्ष्वाकुकुल के प्रथम, जितेन्द्रिय वृषभजिन ने कर्मभूमि के प्रारम्भ में समस्त प्रजा के कष्टों को जानकर उनके जीवित रहने के लिए उन्हें कृषि, मषि, असि, विद्या, शिल्प और वाणिज्य, आजीविका के उपयोगी छह कार्यों में शिक्षित किया था। पश्चात् हेय और उपादेय तत्त्व को ठीक से जानकर समस्त परिग्रह से विमुक्त हो गये।

Scanned with OKEN Scanner

जैनेतर साहित्य में ऋषभदेव

जैन और जैनेतर साहित्य में ऋषभ या वृषभदेव को स्वयम्भू, प्रजापति, विधाता, पुरुदेव, इक्ष्वाकु, हिरण्यगर्भ, शिव, आदिनाथ, आदिदेव, विष्णु, रुद्र, ज्योतिर्धर, आदमबाबा, रोकशव, बाडआल, रेशेफ प्रभृति नामों से अभिहित किया जाता रहा। जनसामान्य में प्रसिद्धि रही है कि उनके स्मरण मात्र से सभी तीर्थों की यात्रा का फल प्राप्त हो जाता है।

यथा-

अष्टषष्ठिषु तीर्थेषु यात्रायां यत्फलं भवेत्।
श्री आदिनाथस्य देवस्य स्मरणेनापि तद् भवेत्॥

निःसन्देह उनका व्यक्तित्व सार्वजनीन, लोकोपकारी और सर्वग्राहक और सम्प्रदाय निरपेक्ष था। मानव विकास के प्रारम्भिक उपदेष्टा और शिवत्व की प्रतिमूर्ति के रूप में वे आबालवृद्ध तक में प्रथित रहे। यही कारण है सभी परम्पराओं के मनीषियों द्वारा सृजित साहित्य में उनके महनीय व्यक्तित्व का मूल्याङ्कन किया गया। विभिन्न परम्पराओं के मनीषियों द्वारा किये गये उस मूल्याङ्कन का ही परिणाम है कि उनके व्यक्तित्व में विविधता पायी जाती है और सम्बन्धित परम्परा में उनके व्यक्तित्व को अपने अनकूल ढालकर उनकी उपासना की गई। ऐसा होते हुए भी सभी परम्पराओं में उनके व्यक्तित्व का स्वरूप अहिंसामयी, निवृत्तिपरक श्रमण संस्कृति का पोषक ही बना रहा।

ऋषभ या गुणों के आधार पर रुद्र, शिव आदि अन्य नाम देकर वैदिक परम्परा में जो वर्णन किया गया है, अधिकांश वे नाम जैन परम्परा के आचार्यों ने भी प्रयुक्त कर श्रमण संस्कृति के अनुरूप उनकी व्याख्या प्रस्तुत की है। ध्यातव्य है कि वैदिक परम्परा में ब्रह्मा, विष्णु और महेश के लिए शक्ति, सामर्थ्य आदि उनकी विशेषताओं को लक्ष्य कर जैसे स्वतंत्र विशेषण या पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त किये गये हैं, वैसे जैन परम्परा में दृष्टिगोचर नहीं होते, वरन् इस परम्परा में वैदिक परम्परा के तीनों देवों के लिए प्रयुक्त होने वाले विशेषण प्रायः प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव में ही घटित किये गये हैं। जैसे-

Scanned with OKEN Scanner

प्रजापति, स्वयम्भू, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, श्रीपति, श्रीकण्ठ आदि, ऋषभदेव के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं।[1] वैदिक परम्परा का सुप्रसिद्ध गायत्रीमंत्र, जो उपासना की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ माना गया है, उसकी व्याख्या जैनाचार्यों ने तीर्थङ्कर ऋषभदेव के गुणों के रूप में की है तथा बताया है कि आदिनाथ के वाचक 24 अक्षरों वाले इस मंत्र का जो एक बार भी जप या ध्यान करता है, वह समस्त कर्मों से निवृत्ति प्राप्त कर लेता है तथा उसे सभी प्रकार के कल्याण प्राप्त होते हैं।[2] मंत्र इस प्रकार है-

ॐ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् आपो ज्योतिरसोमृतं ब्रह्मः।।[3]

जैनाचार्यों द्वारा उपर्युक्त मंत्र के प्रत्येक पद की विस्तृत व्याख्या की गई है, जिसका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है- ओम्-अरहन्त, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु, भूः-सर्वश्रेष्ठ, भुवः-जन्म, जरा, मरण आदि दुःखों से छूटने के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रत्नत्रयमार्ग के उपदेष्टा, स्वः-शुद्धोपयोग में स्थित, तत्- उस परमेष्ठी को, जो सवितुः-हिताहित का मार्ग बतलाने के कारण त्रिलोक के लिए सुखदायक है, वह वरेण्यम्-उपासना योग्य है, यो-उन आदिनाथ ऋषभदेव के उपदेश से, नः-हमारी, धियः-बुद्धि, प्रचोदयात्-शुद्धोपयोग मार्ग में प्रवृत्त हो।[4] मूल गायत्री मंत्र में ब्रह्म स्वरूप सूर्य की उपासना की गई है, जो दूसरे रूप में भगवान् ऋषभदेव की उपासना है क्योंकि जैनाचार्य, ऋषभदेव को सूर्य की तरह तेजस्वी परमपुरुष मानते हैं।[5] सूर्य का पर्यायवाची अग्नि भी है और विष्णु को भी सूर्य कहा गया है। वैदिक ग्रन्थों के अनुसार जो विशेषताएं सूर्य, विष्णु और अग्नि में पायीं जाती हैं, वे सभी विशेषताऐं जैन ग्रन्थों के अनुसार भगवान् ऋषभदेव में भी पायीं जातीं हैं।

जैन अनुश्रुतियों के अनुसार अवसर्पिणी काल के तीसरे भाग में चौदह कुलकर हुए, जिनमें अन्तिम कुलकर नाभिराय और उनकी पत्नी से मति, श्रुत और अवधि ज्ञान के धारक जिस पुत्र का जन्म हुआ वह जगत् में ज्येष्ठ, संसार का हित करने वाला होने से उनका नाम वृषभदेव रखा गया। उनके श्रेष्ठ धर्म (वृश) से शोभायमान होने के कारण उन्हें इन्द्र ने वृषभ स्वामी कहा अथवा गर्भावतरण के समय माता मरुदेवी ने स्वप्न में एक वृषभ

(बैल) देखा था जिससे देवों ने उन्हें वृषभ नाम से पुकारा।[6] वृषभदेव का ही पर्यायवाची ऋषभदेव है। उनके समय में ही नगर और ग्राम सुव्यवस्थित हुए, उन्होंने ही मनुष्यों को लोक व्यवहार सिखाया और दयामूलक धर्म की स्थापना करने के कारण उन्हें आदिब्रह्मा के नाम से जाना गया।[7] उनके हिरण्यगर्भ, प्रजापति, आदि अनेक सकारण नाम बताये गये हैं।[8] उनके पुत्र भरत के नाम से इस देश का नाम भारत विश्रुत हुआ।[9] ऋषभदेव जैनधर्म के आद्य तीर्थङ्कर हैं, इसकी पुष्टि जैनेतर साहित्य, पुरातत्त्व और पुराभिलेखों से भी होती है।

वेदों में ऋषभदेव

विश्वसाहित्य में वेदों की गणना प्राचीनतम साहित्य में की जाती है, जिसमें सर्वाधिक प्राचीन ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में 'ऋषभ' या 'वृषभ' शब्द का उल्लेख किया गया है।[10] सायण आदि व्याख्याकारों के अनुसार उन ऋषभ या वृषभ शब्दों को तीर्थङ्करों का बोध कराने वाला नहीं माना। परन्तु अनेक ऋचाओं में आये ऋषभ या वृषभ शब्दों से तीर्थङ्कर ऋषभदेव का उल्लेख होना सूचित होता है।[11] ऋग्वेद में मौनेय, वातरशन, शिश्नदेव, केशी, व्रात्य प्रभृति शब्द भी प्रायः तीर्थङ्कर ऋषभदेव और जैन मुनियों के लिए प्रयुक्त किये गये हैं।[12] यजुर्वेद[13], सामवेद[14] और अथर्ववेद[15] में भी प्रयुक्त ऋषभ और वृषभ शब्दों से भी तीर्थङ्कर ऋषभदेव की सूचना प्राप्त होती है। 'त्रिधाबद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्याविवेश।[16] तनमर्त्यस्य देवत्वमजानमग्रे[17] (मन, वचन, और काय से बद्ध वृषभ ने घोषणा की कि महादेव मर्त्यों में निवास करता है। जिन्होंने सबसे पहले मर्त्य दशा में देवत्व प्राप्त किया था।) जैसे अनेक ऋग्वेद के सन्दर्भ विशेष उल्लेखनीय हैं, जिसमें ऋषभदेव को आदिदेव के रूप में स्वीकार किया गया है। 'वातरशना हवा ऋषभाः श्रमणा उर्ध्वमंथिनो बभूवुः' तैत्तरीयारण्यक[18] के इस छंद में वैदिक ऋषियों के साथ वातरशन और ऋषभदेव का श्रमण और उर्ध्वमंथी के रूप में उल्लेख किया गया है, जिसका समर्थन श्रीमद्भागवद्[19] के 'श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदः' कथन से भी होता है। ऋग्वेद में अन्यत्र यह भी लिखा है कि मुद्गल ऋषि ने इन्द्रियजयी केशी वृषभ को शत्रुओं का विनाश करने के लिए सारथी नियुक्त किया। 'अस्य सारथिः सहायभूतः केशी प्रकृष्ट केशी वृषभः अथावचीत् भृशमशब्दयत्।'

Scanned with OKEN Scanner

वैदिक पुराण साहित्य में ऋषभदेव

वैदिक पुराण साहित्य में ऋषभदेव का विस्तार से वर्णन पाया जाता है। तदनुसार मानव जाति के प्रारम्भकर्ता मनु और सत्रूपा से पांचवीं पीढी में अर्थात् सतयुग के अन्त में ऋषभदेव उत्पन्न हुए। उसमें ऋषभदेव की पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती परम्परा से प्राप्त प्रायः नामों में समानता होने पर भी कथानक का जैन परम्परा से मेल नहीं खाता। फिर भी ऋषभदेव के सर्वातिशायी व्यक्तित्व का अवश्य पता चलता है। श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार राजा नाभि की रानी मरुदेवी से ऋषभदेव ने आठवां अवतार ग्रहण किया।[20] स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत, प्रियव्रत के पुत्र आग्नींध्र और आग्नींध्र के नौ पुत्र हुए, उनमें नाभिराज ज्येष्ठ थे। नाभिराज के घर में ऋषभदेव का अवतार हुआ था, जिससे उन्हें नाभिनन्दन नाम से अभिहित किया गया। शरीर सुडोल, बल, ऐश्वर्य, तेज आदि गुणों से युक्त होने के कारण उनके पिता ने नाभिनन्दन का नाम ऋषभ रखा। ऋषभ को राज्याभिषक्त कर नाभिराज पत्नी मरुदेवी के साथ वन में चले गये और वहां उन्होंने तपस्या कर समाधियोग पूर्वक भगवद्-प्राप्ति की।[21] नाभिखण्ड को कर्मभूमि मानकर और गृहस्थधर्म की शिक्षा देने के लिए ऋषभ ने इन्द्र द्वारा प्रदत्त जयन्ती नाम की कन्या से विवाह किया। जिससे सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें महायोगी भरत ज्येष्ठ थे। उन्हीं भरत के नाम से उक्त खण्ड भारतवर्ष के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[22] 'ऋषभस्तं पवित्राणां' लिखकर महाभारत में ऋषभ को पवित्रों में पवित्र बताया गया है।[23] शिवपुराण में ऋषभ को शंकर का अवतार माना है।[24]

मार्कण्डेयपुराण[25], कूर्मपुराण,[26] अग्निपुराण[27], वायुपुराण,[28] ब्रह्माण्डपुराण,[29] वाराहपुराण,[30] लिङ्गपुराण[31], विष्णुपुराण,[32] स्कन्धपुराण[33] आदि में भी प्रायः इसी तरह का वर्णन प्राप्त होता है। कुछ पुराणों में परम्परा विषयक उल्लेखों में अन्तर है। यथा मार्कण्डेय पुराण के अनुसार स्वयम्भू से आग्नींध्र, आग्नींध्र से नाभि, नाभि से ऋषभ और ऋषभ से भरत हुए। भागवद् पुराण में यह परम्परा मनु से प्रियव्रत, प्रियव्रत से आग्नींध्र, आग्नींध्र से नाभि और नाभि से ऋषभ और ऋषभ से भरत हुए, मानी गयी है, अन्य पुराणों में मनु के बाद प्रियव्रत, नाभि, ऋषभ और भरत का उल्लेख किया गया है। ऐसा होने पर

भी नाभि से ऋषभ और ऋषभ से भरत होने विषयक विचार में सभी एकमत हैं। शिवपुराण में लिखा है कि परम, पावन और महान् ऋषभ का चरित्र स्वर्ग और यश को प्राप्त कराने वाला होता है, इसलिए उसे प्रयत्नपूर्वक सुनना चाहिए।[34]

बौद्ध साहित्य में ऋषभदेव

आर्यमंजुश्रीमूलकल्प नामक बौद्ध ग्रन्थ के प्राचीन भारत के राजाओं के वर्णन के प्रसङ्ग में नाभिपुत्र ऋषभ और उनके पुत्र भरत का उल्लेख प्राप्त होता है।[35] बौद्ध दार्शनिक धर्मकीर्ति ने दिगम्बरों के अनुशास्ता के रूप में ऋषभ और महावीर का उल्लेख किया है।[36]

ऋषभ और शिव की एकात्मकता

हिन्दु पौराणिक साहित्य में शिव के जिस स्वरूप का वर्णन किया गया है, वैसा ऋग्वेद में दृष्टिगोचर नहीं होता। ऋग्वेद में जो रुद्र का वर्णन किया गया है, वही परवर्ती काल में शिवस्वरूप का परिचायक बना। अवधेय है कि ऋग्वेद के रुद्रसूक्त में रुद्र के साथ वृषभ शब्द का भी प्रयोग किया गया है।[37] पुराणों में तो रुद्र को आर्हत भी कहा गया है।[38] वस्तुतः 'शिव' नाम वाचक होने के साथ गुण सूचक भी माना गया है। वैदिक और श्रमण दोनों संस्कृतियों के साहित्य में उपलब्ध ऋषभ और शिव विषयक सन्दर्भ एक ही उपास्य के सूचक भी प्रतीत होते हैं। दोनों संस्कृतियों के साहित्य में अनेक स्थलों पर ब्रह्मा और विष्णु के पर्याय नामों में ऋषभ की भी गणना की गई है।[39] प्रभाषपुराण में ऋषभ को जिनेश्वर, सर्वज्ञ और शिव के रूप में बताया गया है।[40] महाभारत में ऋषभ को शिव भी कहा गया है।[41] भर्तृहरि ने वैराग्य शतक में शम्भु से पाणिपात्र, दिगम्बर साधु बनने की कामना की गई है।[42]

वैदिक परम्परा के शिव और श्रमण परम्परा के ऋषभ, की विशेषताओं की तुलना करने से अवगत होता है कि दोनों का साधना या मुक्ति का क्षेत्र कैलाश पर्वत रहा है। दोनों परम्पराओं में शिव के दिगम्बर स्वरूप को दर्शाया गया है। दोनों के जटाएं पायी जाती हैं। दोनों निवृत्ति मार्ग के पोषक हैं। दोनों की प्राचीन मूर्तियों के पादपीठ या पार्श्व में बैल का अङ्कन है। शिव त्रिशूलधारी हैं, ऋषभदेव भी रत्नत्रयरूप कर्मविनाशक त्रिशूल के धारी हैं।

Scanned with OKEN Scanner

ज्ञात हो उदयगिरि-खण्डगिरि की जैन गुफाओं, मथुरा के कंकाली टीले के अयागपट्टों और मोहनजोदड़ो की मुहरों पर त्रिशूल चिह्नों का अङ्कन है। वस्तुत: जैन परम्परा में त्रिशूल रत्नत्रय का द्योतक है। शिव के ललाट पर अर्द्धचन्द्र जैन परम्परा में सिद्धशिला का सूचक है। जैनाचार्यों ने गंगावतरण, शिवरात्रि आदि का भी सम्बन्ध ऋषभ के साथ घटित किया है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य में ऋषभदेव का उल्लेख होने से वेदपूर्व उनका अस्तित्व असन्दिग्ध है। वे सनातन परम्परा में हुए महापुरुषों में गणनीय हैं तथा वैदिक और श्रमण दोनों परम्पराओं में उनका विशिष्ट स्थान है। उनके साथ अहिंसक विचारधारा के समुदाय ने जुड़कर परम्परा के रूप में आर्हत, श्रमण, जैन आदि नाम पाया। यही कारण है कि प्रभूत रूप में उपलब्ध जैन और जैनेतर साहित्य में ऋषभदेव विषयक सन्दर्भों में प्राय: समानता है। रुद्र, शिव और ऋषभदेव एक ही उपास्य के पर्याय होना चाहिए क्योंकि दोनों संस्कृतियों में इनके स्वरूप का वर्णन विशुद्ध अहिंसक, निरारम्भ, अपरिग्रही, दिगम्बर-तपस्वी आदि के रूप में दर्शाया गया है। प्रतीत होता है उपासना की विविधिता के कारण बाद में एक ही उपास्य की दो परम्पराएं वन गयीं। यदि तुलनात्मक दृष्टि से इसपर स्वतंत्र रूप से शोधकार्य किया जाये तो अनेक नवीन तथ्य उद्घाटित हो सकते हैं।

सन्दर्भ :-

1. जिनसेन, आदिपुराण, सं./अ. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, सं.1983, भा.ज्ञा. काशी.
2. विस्तृत देखें, तीर्थङ्कर ऋषभदेव के विविध रूप, ऋषभांचल गौरव, पृष्ठ 62
3. ऋग्वेद, 3/62/10, सामवेद, 2/6/3/10/1, छान्दोग्योपनिशद् 3/12/1, बाजसनेय, 3/35/22/9
4. जैन सिद्धान्त भवन आरा में संरक्षित एक प्राचीन गुटका, उद्धृत, क्षु. चिदानन्द स्मृति. ग्रन्थ, पृष्ठ 54
5. त्वामामनन्तमुनय: परमं पुमांस, मादित्यवर्णममलं तमस: परस्तात्। -मानतुंग, भक्तामरस्तोत्र, 23
6. जिनसेन, आदिपुराण, 14/160-62, अन्य ग्रन्थ दृष्टव्य-तिलोयपण्णत्ती, त्रिलोकसार, कल्पसूत्र, त्रिशष्टिालाकापुरुषचरित्र, आवश्यकचूर्णि, आवश्यकनिर्युक्ति आदि
7. यतिवृषभ, त्रिलोकसार, 102

Scanned with OKEN Scanner

8. हरिवंशपुराण, 8/206-209, विस्तृत दृष्टव्य, तीर्थङ्कर ऋषभदेव के विवि
रूप, ऋषभांचल गौरव ग्रन्थ, पृष्ठ 62
9. शिलालेख, उदयगिरि खण्डगिरि, उड़ीसा
10. ऋग्वेद, 1/190/1, 3/31/21, 5/28/4, 6/26/4, 8/45/38, 10/102/6 आदि
11. वहीं, मण्डल 3, सूक्त 38 मन्त्र 5, 4/58/3, आदि।
12. वहीं, 10/136/1-7, 6/19/11 आदि।
13. यजुर्वेद, अध्याय, 31-78
14. सामवेद, 3/1
15. अथर्ववेद, 19/12/4
16. ऋग्वेद, 4/58/3
17. वहीं, 39/17
18. तैत्तरीयारण्यक, 2/7/1
19. श्रीमद्‌भागवद्, 11/2
20. अष्टमे मरुदेव्यां तु नाभिजातः उरुक्रमः।
दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्वाश्रम नमस्कृतम्।। - श्रीमद्‌भागवत, 1/3/13
21. वहीं, पंचम स्कन्ध, अध्याय 2 और 4
22. वहीं, अध्याय 3
23. महाभारत, अनु. 14/ 318
24. शिवपुराण, 7/93
25. मार्कण्डेयपुराण, अध्याय 40, श्लोक 39-41
26. कूर्मपुराण, अध्याय, 41, श्लोक 37 एवं 38
27. अग्निपुराण, अध्याय, 10, श्लोक 10-12
28. वायुपुराण, पूर्वार्द्ध अध्याय, 33, श्लोक 40-42
29. ब्रह्माण्डपुराण, पूर्वार्द्ध, अनुषंगपाद, अध्याय 14, श्लोक 59-61
30. वाराहपुरण, अध्याय 4
31. लिङ्गपुराण, अध्याय 47, श्लोक 19-24
32. विष्णुपुराण, द्वितीयांश, श्लोक 27, 28
33. स्कन्धपुराण, माहेश्वरखण्डान्तर्गत, कौमारखण्ड, अध्याय 37, श्लोक 57
34. ऋषभस्य चरित्रं हि परमं पावनं महत्।
स्वर्ग्ययशस्यामायुज्यं श्रोतव्यं च प्रयत्नतः ।। - शिवपुराण, 4. 48

Scanned with OKEN Scanner

35. आर्यमंजुश्रीमूलकल्प, पृष्ठ 390, 391

36. न्यायविन्दु, तृतीय अध्याय,

37. ऋग्वेद, 2/33/15, 1/114/. 7/46 आदि

38. पदमपुराण, 93/3/16

39. स्कन्धपुराण, 18. 26-27 तीर्थङ्कर ऋषभदेव के विविध रूप, ऋषभांचल गौरव, पृष्ठ 62

40. कैलाशे विमले रम्ये वृषभोऽयं जिनेश्वरः।
चकार स्वर्गावतारं च सर्वज्ञः सर्वगः शिवः।। - प्रभाषपुराण, 49

41. ऋषभ त्वं पवित्राणां योगिनां निष्कलः। - महाभारत, अनुशासन पर्व, अ. 14, श्लोक, 18

42. एकाकी निष्पृहः शान्तः पाणिपात्रे दिगम्बरः।
कदा शम्भो! भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः।। - वैराग्यशतक, पद्य 89

Scanned with OKEN Scanner